ISSN No. 2394-5990

छत्रपति शाहू - लोकतंत्र के स्तंभकार

डॉ. श्वेता बा. चौधरे
हिन्दी विभागाध्यक्षा,
मुळा एज्यूकेशन सोसाइटी का कला,
वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, सोनई,
नेवासा तहसील, अहमदनगर, महाराष्ट्र - 414105

बीज शब्द : बलूतदारी प्रथा,करवीर गॅझेट,दत्तक ग्रहण कानून, मांडलीक राज्य

सारांश :

भारतीय संस्कृति- समाज में सदियों से प्रचलित एक शब्द अपने आप में विशेष रहा है -राजर्षि, ऐसा व्यक्ति जो राजा और ऋषि या विद्वान भी हो। अन्य शब्दों में, राजर्षि वह ऋषि कहलाते थे,जो राजवंश या क्षत्रिय कुल के हो। महाराष्ट्र की धरती को आधुनिक युग में एक ऐसा ही राजर्षि मिला- राजर्षि छत्रपती शाहू महाराज, जो जन्म से राजा और कर्म से ऋषि समान थे। इसलिए जनता के बीच वे ङ्गराजर्षिफ इस उपाधि से विभूषित हुए। शाहू की प्रकृति- स्वभाव उन्हें ङ्गअष्टौ गुणा: पुरुषंफ बनाती है। वे भारतीय शास्त्रीय संगीत के पुरस्कर्ता, मराठी रंगभूमि के शिल्पकार, मल्लविद्या के आधार स्तम्भ और आधुनिक महाराष्ट्र निर्माण के एक निष्ठावान कार्यकर्ता बने रहे। समाज के पिछड़े - दलित वर्ग की उन्नति में देश का उज्वल भविष्य, तथा इसे ही समाजोद्धार मानकर शाहू ने शिक्षार्जन की सक्ती के माध्यम से समाज को सदियों से कर्मकांड, कुप्रथा एवं परंपरा के जड़ों से स्थापित मानसिक और सामाजिक गुलामी से मुक्त करवाने की कोशिश की। शाहू ने इस समाज को मानवीय हक्क दिलवाने की पहल की। शाहू का समय न सिर्फ महाराष्ट्र के लिए बल्कि सम्पूर्ण भारत में ही सामाजिक अशांतता का काल था। फिर भी शाहू ने अपने संयम और स्वभाव से परिवर्तन का आग्रह करते हुए भी सामाजिक स्थिरता को बनाए रखने की कोशिश की। इस बीच गरीबों के साथ समरस होने वाले, उनके हितों के बारे में सोचनेवाले शाहू के व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन पर टीका करने की कोशिश भी हुई, किन्तु उन्होंने इसकी परवाह नहीं की। कला-संस्कृति के नवत्थान के लिए अग्रेसर शाहू सही मायने में भारत के लोकतन्त्र के स्तंभकार बने।

मूल आलेख :

महाराष्ट्र के कोल्हापुर संस्थान के छत्रपती राजश्री शाहू महाराज अपने द्वारा सांस्कृतिक, सामाजिक और राजकीय क्षेत्र में दिये गए अतुलनीय योगदान के लिए केवल महाराष्ट्र में ही नहीं, राष्ट्रीय स्तर पर जाने जाते है। तत्कालीन समाज में समता तथा प्रजातन्त्र जैसे मूल्यों का जनमन में बीजावपन करनेवाले एक सच्चे लोकतन्त्रवादी के रूप में शाहू का कार्य विशेष उल्लेखनीय रहा है। राजकुल के होकर भी उनके द्वारा किए गए जनसामान्य के कार्य सही मायने में उन्हें समाजसुधारक की उपाधि देते है।सन 1812 के ब्रिटिशों से हुए तह के कारण कोल्हापुर एक मांडलीक राज्य बना। 1862 के दत्तक ग्रहण कानून के अनुसार मात्र कोल्हापुर के राजा को वंशपरंपरा से दत्तक वारस ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त था। जिसके चलते आबासाहेब घाटगे के जेष्ठ पुत्र यशवंतराव बाबासाहेब कोल्हापुर की गद्दी पर शाहू महाराज इस नाम से विराजमान हुए। शाहू के समय के ब्रिटिश शासनतंत्र के नियमों के चलते ब्रिटिश अधिकारियों की देखरेख में शाहू की शिक्षा पूर्ण हुई। किन्तु ब्रिटिश गुलामी के इस समय में भी भारतीय समाज उन्हीं पुरानी रूढ़ियों से चली आ रही अनेक मूलभूत समस्याओं से जूझ रहा था। खुद राजतंत्र में ब्राह्मण-गैर ब्राह्मण वर्ग जैसे मुद्दे को लेकर संघर्ष चल रहा था। समाज भी अनेक भ्रष्ट रीतियों में फंसा था। ऐसे में शाहू महाराज के लिए राजसत्ता और समाज इन दोनों के कई छुपे और प्रकट खतरों से जूझना था। अत: एक सच्चा समाजसुधारक बन कर शाहू ने सामाजिक समानता के लिए अतीव प्रयत्न किए।

शाहू के समय में ब्राह्मणवादी पारंपरिक मूल्यों की अति के कारण समाज क्षीण हो चुका था। जिस वक्त शाहू ने अपने संस्थान के सत्तासूत्र को हाथ में लिया तब महाराष्ट्र में तीन सामाजिक-राजकीय विचार प्रवाह चल रहे थे। जिनमें पहला गोपाल गणेश आगरकर और न्या. महादेव गोविंद रानडे के विचारों से प्रेरित विचारवर्ग था, दूसरे में महात्मा फुले के

सत्यशोधक समाज के कार्यकर्ता थे और तीसरे में लोकमान्य तिलक के विचारों के समर्थक थे। यह तीनों शक्तियाँ तत्कालीन समाज के उच्च वर्ग में व्याप्त कुप्रथाओं पर प्रहार कर रही थी। यदा-कदाचित अस्पृश्य तथा पिछड़ी जन-जाति के त्रास, असमानता पर होने वाली चर्चाएँ भी होती थी, किन्तु वह प्रत्यक्ष की भूमि से ऊपर ही थी। सामाजिक और धार्मिक बंधनों के कारण गैर ब्राह्मण समाज को शिक्षार्जन में जो बाधा आ रही थी, उसके परिणाम स्वरूप ब्रिटिश अमल में नौकरीयों में ब्राह्मणों का वर्चस्व सर्वसामान्य बन चुका था। राजकाज में एक ही जाति की अति के चलते न्यायदान की व्यवस्था भ्रष्ट और पक्षपाती बन चुकी थी। ऐसी स्थिति में शाहू के सामने सबसे बड़ी चुनौती प्रस्थापित लोगों की थी। अपने संस्थान के राजकाज में सुव्यवस्था लाने के साथ आर्थिक- सामाजिक समतोल को बनाए रखना जैसे काम उनके लिए शेष थे।

महाराष्ट्र में दलित और पिछड़े वर्ग में सतही स्तर पर कम करने वाली पहली संस्था महात्मा फुले की सत्यशोधक समाज थी। इन प्रवर्गों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार का श्रेय फुले के साथ शाहूको भी जाता है। स्थानिक राजकाज और सार्वजनिक संस्थाओं में पिछड़े वर्ग को प्रतिनिधित्व दिलवाकर ही उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागृति बढ़ाई जा सकती है। अत: इस वर्ग में शिक्षा के प्रसार के साथ ही यह सब सहज साध्य किया जा सकता है, यह विश्वास शाहू को था। अपने इस हेतु की सिद्धि में आने वाली नई समस्याओं के निराकरण के लिए ही उन्होंने पहले छात्रावास खोले। स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया।

सातवे एडवर्ड के राज्यारोहण के समारोह में शामिल होने जून 1902 में छत्रपती शाहू महाराज इंग्लंड की यात्रा के लिए निकले। इस यात्रा के प्रयोजन स्वरूप वे पहली बार यूरोपियन दुनिया, वहाँ की सभ्यता- संस्कृति को देख रहे थे। इस नई दुनिया को देख कर उनका अपने समाज के प्रति दृष्टिकोण भी बदलने लगा। अब तक अमूर्त रूप में उनके मन में उमड़ने वाले गरीब व पिछड़े वर्ग की उन्नती के विचारों को प्रत्यक्ष आकार मिलने लगा, अपने संस्थान के पिछड़े वर्ग की प्रगति के लिए कुछ कर दिखाने का उनका निर्धार दृढ़ होने लगा। जिसके परिणाम स्वरूप 26 जुलाई 1902 को ङकरवीर गॅझेटफमें शाहू ने एक अद्भुत घोषणा पत्र प्रसिद्ध किया, जिसके अनुसार पिछड़े वर्ग की प्रगति को साध्य करने के लिए बनाई गई उनकी नीतियों की पूर्ति हेतु इसवर्ग के लोगों को उच्च शिक्षा लेने के लिए उद्युक्त किए जाने के लिए उन्हें सरकारी खाते में पहले से अधिक नौकरियाँ दिलवाने की मंशा उन्होंने प्रकट की। शाहू के अनुसार जब तक समाज के सभी स्तरों पर शिक्षा का सम-समान प्रचार नहीं होंगा, तब तक हम जाति-व्यवस्था में भी समानता के धरातल पर परिवर्तन नहीं कर सकते। जिसके कारण ऊपरी तौर पर किए गए सभी प्रयत्न निष्फल होंगे। पिछड़े वर्ग की उन्नति के हेतू निकाले गए शाहूके इस घोषणा पत्र से अल्पसंतुष्ट हो कुछ लोगों ने यह कह कर इस परिवर्तन के विरुद्ध चीखना-चिल्लाना शुरू किया कि शाहू मानवी गुणवत्ता से अधिक जाति को महत्वपूर्ण मानते है। बावजूद इन सबके इस बात को कोई नकार नहीं सकता कि शाहू के इस घोषणा पत्र से गैर-ब्राह्मण वर्ग को राजकाज में धीरे-धीरे ही क्यों न हो, पर बड़ा हिस्सा मिलने वाला था।

इस घोषणा पत्र की प्रसिद्धी के दिन से सरकारी खाते के रिक्त स्थानों पर 50 प्रतिशत जगह पिछड़े वर्ग के सुशिक्षित युवाओं के लिए आरक्षित रखने की इच्छा शाहू ने व्यक्त की थी। इसके साथ ही सरकारी खातों में जहां पिछड़े वर्ग के कर्मचारियों की संख्या कुल संख्या से 50 प्रतिशत से भी कम होंगी, वहाँ तुरंत पिछड़े वर्ग से युवाओं की नियुक्ति रिक्त पदों पर करने के आदेश शाहू ने दिये थे। इस गॅझेट में शाहू ङपिछड़े वर्गफकी संकल्पना भी स्पष्ट करते है। जिसके अनुसार ब्राह्मण, प्रभू, शेणवी, पारसी और अन्य विकसित जन-जातियों के अतिरिक्त का समाज वे इस वर्ग के अंतर्गत समाविष्ट करते है।शाहू की यह घोषणा केवल कोल्हापूर संस्थान के लिए ही नहीं, बल्कि ब्रिटिश भारत के लिए भी एक नये युग की घोषणा थी। सदियों से समाज में अपना एकछत्र अमल, वर्चस्व बनाए रखने वाले प्रस्थापित वर्ग की सत्ता को प्रत्यक्ष शह देने के लिए और पिछड़े वर्ग को पुन: अधिकार ग्रहण के लिए यह घोषणा पत्र महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। जैसे की उम्मीद थी, इस घोषणा पत्र का ब्राह्मण समाज द्वारा विरोध हुआ। जब की इंग्लंड से वापस अपने संस्थान में आने के बाद इस घोषणा पत्र का सकारात्मक परिणाम अन्य प्रजाजनों पर भी तुरंत दिखाई दिया। शाहूमहाराज के वापस लौटने पर जहाँ ब्राह्मण वर्ग अपनी उदासीनता दर्शा रहा था, वहीं इन ब्राह्मणों की परवाह न करते हुए संस्थान की मराठी, जैन, मुस्लिम आदी प्रजा ने शाहू का काफी गर्म-जोशी से स्वागत किया। शाहू के समय में कोल्हापूर संस्थान की कुल नऊ लाख की प्रजा में गैर ब्राह्मण समाज की संख्या 97 प्रतिशत थी तो,ब्राह्मण जाति केवळ 3 प्रतिशत थी थी। ऐसे में केवल 3 प्रतिशत लोगों को कुल नौकरियों में 50 प्रतिशत की जगह शाहूने पहले जैसी ही रखी, यह उनकी नीति उनके अत्यंत उदात्त भाव की ही परिचायक थी। ऐसा होते हुए भी ङकेसरीफ जैसे तत्कालीन वृत्तपत्र ने इस घोषणा पत्र को ङअन्यायकारकफकहते हुए ब्राह्मण और संस्थान के हितचिंतकों के लिए धक्कादायक माना। तो 'मराठा' जैसे साप्ताहिक ने इस घोषणा पत्र के द्वारा छत्रपती शाहू पर राजकाज में जातीयप्रश्न

ISSN No. 2394-5990

लाने की कोशिश करने का आरोप भी लगाया। पिछड़े वर्ग के हित साधने के नाम के नीचे छत्रपती शाहू सिर्फ मराठों का हित साध रहे है, ऐसे आरोप भी शाहू पर लगे। जो भी हों महाराष्ट्र का उपेक्षित तांबोळी, शिंपी, धनगर, मराठा, तेली तथा अन्य उपेक्षित और पिछड़े वर्ग को शाहू महाराज ने राजकाज में यथा योग्य हिस्सा दिया। जबकि महाराष्ट्र के कई ब्राह्मण शाहू के इस घोषणा पत्र को 'एक अपवित्र वस्तु' के रूप के धिक्कारित करते है। वास्तविकता यह थी की शाहू के इस घोषणा पत्र ने उपेक्षित और पिछड़े वर्ग को उन्नति का अवसर दिया और ब्राह्मण सत्ता को कड़ी चोट पहुंचाई।

ब्रिटिशों के द्वारा भारत में जो परिवर्तन हुए उसे शाहू सकारात्मक दृष्टि से देख रहे थे। 1905 के आसपास एक जैन छात्रावास के उद्घातन के समय शाहू ने कहा था कि ब्रिटिश रिवासत के जो कुछ परिणाम हुए उनमें से एक यह भी है कि उपेक्षित और पिछड़ी जाती का उद्धार कार्य शुरू हुआ। युगों-युगों से चले आ रहे उस वर्ग के बौद्धिक और सामाजिक गुलामीके अंत का आरंभ हों गया। उस वर्ष की पब्लिक सर्विस परीक्षा में पिछड़ी जाती के परीक्षार्थीयों को मिली सफलता से शाहू महाराज को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। शाहू अपने राज्य के उपेक्षित जन-जाती की उपेक्षितता को दूर करने की कोशिश कर रहे थे, पिछड़ी जाती का पिछड़ापन दूर कर उनके मन-मस्तिष्क में जमे सदियों पुरानी जातीयता के कीचड़ को साफ़ करने का काम कर रहे थे। वे राष्ट्रवाद की नींव को पक्का कर उसपर लोकतंत्र के भवन को खड़ा कर रहे थे। ब्राह्मणी जातिव्यवस्था और अंधश्रद्धा की शृंखला में जकड़े गए लोगों के लिए शाहू के आधुनिक और मानवतावादी मूल्य उनके कार्यों से प्रकट होते है।

शाहू ने महाराष्ट्र की धरती पर जड़ पकड़ चुकी कई पुरातन मान्यताओं प्रहार किए। जिनमें से एक रोटी - बेटी व्यवहार भी था, जिसकी नींव में जातिवादी वह सड़ी-गली मानसिकता थी, जो उच्च वर्ग की गरिमा को कायम रखने के लिए बड़े पैमाने पर समाज के बहुसंख्यांक वर्ग को दास्यत्व की बेड़ियों में जकड़कर रखने में ही अपना बड़पन मान रही थी। शाहू ने अपने अभ्यास और क्षेत्रों की भेंट में साथ ही उनके दरबार में जातीय वरिष्ठता को कायम रखने की जद्दोंजहत करते 'उस' वर्ग के अनगिनत कारनामों को सुना, देखा और स्वयं अनुभव भी किया। अत: समानता का जो सपना शाहू देख रहे थे, उसकी पूर्ति के लिए सबसे पहले निम्न समझी जाने वाली, दलित, पिछड़ी जन-जातियों में एकता का भाव पैदा करना जरूरी था। इसलिए शाहू ने जातिभेद नष्ट करने का कार्य शुरू किया। इस उद्देश्य को पूर्ण करने सबसे पहले उन्होंने मराठों और धनगर समाज में विवाह हो इसलिए इंदौर के महाराज की सहायता मांगी। इस हेतु शाहूने अपने धार्मिक सलाहकार श्री. गुंडोपंत पिशवीकर को इंदौर में अंतरजातीय विवाह के योग्य वातावरण निर्मिति हेतु और वेदोक्त पद्धती से लोगों के संस्कार हो इसलिए भेंजा। जातिभेद निर्मूलन की आवश्यकता को समाज के एकत्व के लिए महत्वपूर्ण जानकार शाहूने हिन्दू और जैन समाज में होने वाले विवाह को पहले ही सम्मति प्रदान की थी। शाहू के विचारों और कार्यों का सकारात्मक परिणाम महाराष्ट्र के सामाजिक आंदोलनों पर पड़ने लगा। जिसकी प्रशंसा में श्री. खासेराव जाधव शाहू को लिखे एक पत्र में कहते है कि शाहू नाजुक और जटिल प्रश्नों को सुलझाने में चतुर है।

भारत में जब 1916-18 के बीच स्वशासन की मांग करता होमरूल आंदोलन चला, जिसकी बांगडोर बाल गंगाधर तिलक ने सँभली थी, तब शाहू इस आंदोलन के विरुद्ध खड़े थे। अपने गृहविभाग के सचिव श्री. कैडेल को वे होमरूलवादियों पर दया न करने के लिए कहते है। शाहू के इस विरोध का कारण उनके द्वारा श्री. कैडेल और श्री. सिड़नहैम को लिखे गए पत्रों में मिलता है। शाहू के अनुसार होमरुलवादीयों को न तो जनता के प्रति सहानुभूति है, न उन्हें जनता से कोई लेना-देना है। अपने गुरु समान श्री. सिड़नहैम को व्यक्तिगत रूप से वे लिखते है कि दलित-पिछड़ी जन-जतियों को उनकी वर्तमान अवनति और धार्मिक, सामाजिक निर्बंधों का ज्ञान हो रहा है। ऐसे में अगर सत्ता ब्राह्मणों के हाथ आ गई तो फिर एक बार ब्राह्मणी शासनतंत्र शुरू हो जाएंगा। ऐसी स्थिती को भापकर ही शाहू ने इस आंदोलन का विरोध किया था। शाहू को तब बार-बार इस बात की कमी खल रही थी कि भारत के पिछड़े - दमित वर्ग को न्याय दिलानेवाला, उनका अपना कोई सशक्त नेतृत्व नहीं है।

शाहू की नीति थी के वे पहले करके दिखाते थे, फिर कहते थे। इसी नीति से दुनिया में परिवर्तन लाये जा सकते है, इसपर उनका दृढ़ विश्वास था। अछूतों को हजारों सालों से चली आ रही गुलामी से छुड़वाने की कोशिश करते हुए उन्होंने जुलाई 1918 में अछूत मानी गई समाज की एक बड़ी आबादी की गुलामी की जंजीरों को तोड़ा। इनमें से जो जातियाँ पेशेवर गुन्हेगार मानी जाती थी और उस जाती के प्रत्येक व्यक्ति को हर रोज पोलिस चौकी जाकर हाजरी लगानी पड़ती थी,शाहू ने यह प्रथा बंद कर महार, मांग, रामोशी, बेरड जैसी कई जन-जातियों को इस अपमानित प्रथा से से मुक्त कर उन्हें सामान्य जनता की तरह जीने के हक्क दिये। इसी को व्यावहारिक रूप देते हुए अगस्त 1918 में उन्होंने यह आदेश भी निकाला की तलाठी पद के चुनाव के लिए सर्वप्रथम अछूत उम्मीदवारों को

प्रधानता दी जाए। सितंबर 1918 के अन्य एक आदेश से शाहू ने महारों की वतनी ज़मीनें उनके नाम पर कर महाराष्ट्र में चली आ रही 'वतनदारी या बलूतदारी' प्रथा को नष्ट किया।

शाहू को शिक्षा का मूल्य मालूम था, इसलिए सामाजिक एकत्व में शिक्षा का महत्व जानकार उन्हों ने जात, वर्ग, पंथ, लिंग आदि का भेद स्वीकार न करते हुए सभी के लिए शिक्षा अनिवार्य की। उन्होंने स्वयं समाज के सभी स्तरों का अपने शिक्षा संस्थान में स्वागत किया । समाज के हर तबके को शिक्षा संबंधी सहुलतें मिले इसलिए शाहू ने अलग-अलग जाती- धर्म के लिए स्वतंत्र छात्र- अधिवास खोलें। इसी में एक और कदम आगे बढ़ते हुए गरीब और पिछड़े वर्ग के होनहार छात्रों के लिए विद्यावेतन देना शुरू किया। भारत का प्रथम व्यक्ति सक्षम और स्व:समर्थ हो अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए शिक्षा का प्रसार करने को अग्रक्रम देना अपरिहार्य होंगा यह शाहू की सोच थी। इसलिए उन्होंने ब्रिटिश सरकार को धन्यवाद भी दिया था। साथ ही 'सर्वांगीण शिक्षा' जैसी संकल्पना सामने रखी। शाहू ने समाज के सभी स्तरों के लिए समानता को प्रधानता दी। शाहू जिस सामाजिक आंदोलन के प्रतिनिधि बने वह समाजविभाजन करनेवाला आंदोलन नहीं था, बल्कि समाज सुधारों को महत्व देनेवाला आंदोलन था, जिसका प्रमुख लक्ष्य सामाजिक उन्नति था। अस्पृश्य और दलित - पिछड़े वर्ग को स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्र मिले, इस मांग की पूर्ति के लिए इंग्लंड में प्रचार करने के लिए शाहूने 3 हजार रुपये की हुंडी दी थी।

जातिव्यवस्था, जातिभेद और अस्पृश्यता नष्ट करने के छत्रपती शाहू के प्रयास तत्कालीन समाज, ब्रिटिश नीतियाँ और राजनैतिक स्थिति को देखते हुए अतुलनीय थे। समाज के सभी घटकों को समान प्रतिनिधित्व तथा उन्नति के समान अवसर मिले इस हेतु सरकारी नौकरीयों के लिए आरक्षण प्रणाली,उस भारतीय पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिए ऐतिहासिक निर्णय था, जिसका अभाव आज आज़ादी के 75 सालों के बाद भी दिखाई देता है। लोकतन्त्र में सर्वहारा वर्ग के लिए शाहूजैसा या यूँ कहे तो उनके इतना ही शिद्दत से निर्णय लेना वाला जनप्रतिनिधी दूर-दूर तक दिखाई नहीं देता। अपने संस्थान के महाराज होने की ज़िम्मेदारी का वहन करते हुए उन्होंने शाही हुकुम द्वारा अपने प्रजाजनों को समाज के हर व्यक्ति के साथ सन्मानपूर्वक व्यवहार और मानवीय मूल्यों की रक्षा करने का आदेश दिया। अछूतों के लिए संस्थान के सार्वजनिक रस्ते, गलियाँ, कुएं और तालाब के इस्तेमाल का समान हक्क दिया। शाहू ने 27 जुलाई 1918 को शाही आदेश द्वारा घोषणा कि, की उनके राज्य के अस्पृश्य बिना किसी बाधा के सभी नागरी हक्क का उपभोग कर सकेंगे। अपने संस्थान में स्त्री सबलीकरण के लिए शाहू ने लड़कियों के लिए विद्यालय खोलें। सदियों से चली आ रही देवदासी प्रथा के विरोध में खड़े होकर भगवान को कन्या अर्पण करने की प्रथा, जिसमें कालांतर से मंदिर या ईश्वर केनाम पर वहाँ की लड़कियों का दैहिक शोषण किया जाता था, निडर होकर शाहू ने ऐसी अघोरी प्रथा पर रोंक लगाई; विधवा पुनर्विवाह को सम्मति दी और बालविवाह रोखने के लिए प्रयास किए।

शाहू के अप्रतिम कार्यों के गौरव के कारण वे न सिर्फ कोल्हापूर संस्थान के, बल्कि सम्पूर्ण भारत के ऐसे पहले महाराज बने जिन्हें इतिहास आज भी अनमोल रत्न मानता है । शाहू के पूर्व हो चुके महान समाजसुधारक ज्योतिबा फुले के सामाजिक योगदान का भी शाहू पर अधिक प्रभाव पड़ा। उन्होंने फुले के सामाजिक मूल्यों का अनुकरण करने का प्रयत्न किया। फिर भी फुले के कार्यों से पूर्ण अलग अस्तित्व बनाकर शाहू आधुनिक युग के अनुरूप पुरोगामी बनने के लिए तयार हो रहे महाराष्ट्र के आदर्श और सक्षम सम्राट के रूप में उभरे। शाहू के पुरोगामी विचारों ने सामाजिक संरचना में परिवर्तनों के लिए जो किया, वह आनेवाले समय में भी समाज के लिए पथदर्शी सिद्ध हुआ। राजर्षी शाहू महाराज ने सामाजिकदृष्टि से असहाय जनता की उन्नती के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित किया। शाहू के इन अथक प्रयासों का मूल हेतू यही था कि समाज के सभी नागरिकों को मानवता के आधार पर सभी हक्क मिलें। शाहू महाराज के इन्हीं क्रांतिकारी तत्त्वज्ञान का समाज के मानसपटल पर काफी अधिक प्रभाव रहा और आने वाले समय में भी शाहू अपनी इसी उदारमतवादी भूमिका के लिए सदियों तक इस भूमि के लिए वंदनीय रहेंगे।

संदर्भ सूची :

1. धनंजय कीर - राजर्षी शाहूमहाराज - पॉप्युलर प्रकाशन - 1992
2. तु.बा. नाईक - छत्रपती राजर्षी शाहूमहाराज-मेहता पब्लिशिंग हाऊस, पुणे - 1974
3. डॉ. आलटे आर. एन.-सामाजिक न्यायाचे पुरस्कर्ते राजर्षी शाहूमहाराज- लूलू पब्लिकेशन -2022
4. डॉ. जयसिंगराव पवार- समाज क्रांतिकारक राजर्षी शाहूछत्रपती - मेहता पब्लिशिंग हाउस - 2021
5. ग्रेट इंडियन सोशल रिफॉर्मर हिंन्दी- मनोज डोळे

■■■